



2026:AHC-LKO:19192

इलाहाबाद उच्च न्यायालय

लखनऊ

आपराधिक अपील सं. - 1696/2004

कृपा शंकर अग्रवाल उर्फ गुड्डू

....अपीलकर्ता (गण)

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य

... प्रतिवादी (गण)

अपीलकर्ता (गण) के अधिवक्ता

: पंकज वर्मा

प्रतिवादी (गण) के अधिवक्ता

: शासकीय अधिवक्ता

न्यायालय सं. - 28

माननीय न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव

1. वादों की सूची संशोधित कर दी गई है और इस वाद को संशोधित सूची में लिया जा रहा है।

2. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता और राज्य की ओर से विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता को सुना गया।

अस्वीकरण:- अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।



3. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 374(2) के अंतर्गत यह अपील, अपर सत्र न्यायाधीश/फास्ट ट्रैक कोर्ट संख्या 5, गोंडा द्वारा सत्र विचारण संख्या 450/1996 में दिनांक 28.07.2004 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध दाखिल की गई है। यह वाद पुलिस थाना कोतवाली नगर, जिला गोंडा (वर्तमान जिला- बलरामपुर) के अपराध संख्या 200/1994 से संबंधित है, जिसमें अपीलकर्ता को भारतीय दंड संहिता की धारा 324 के अंतर्गत दोषी ठहराया गया और उसे दो वर्ष के कठोर कारावास तथा 3,000/- रुपये के जुर्माने का दण्ड आदेश सुनाया गया, और जुर्माना अदा न करने की स्थिति में, उसे तीन माह के अतिरिक्त साधारण कारावास का दण्ड भुगतने का आदेश दिया गया। विद्वान विचारण न्यायालय ने आगे यह निर्देश दिया कि जेल में पहले से बिताई गई अवधि को सुनाए गए दण्ड के साथ समायोजित किया जाए और सभी दण्डों को एक साथ समवर्ती रूप से चलाने का आदेश दिया गया।

4. वाद के संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि, अभियोजन पक्ष के अनुसार, दिनांक 05.08.1994 को लगभग 8:30 बजे रात में, पीड़ित चंद्रप्रकाश, दवा खरीदने के लिए अपीलकर्ता-अभियुक्त कृपा शंकर अग्रवाल (उर्फ गुड्डू) की दवा की दुकान पर गया। उनके बीच दवा की कीमत को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया, विशेष रूप से 'डेक्वाडिन' गोलियों की कीमत को लेकर। इस कहासुनी के दौरान, अपीलकर्ता-अभियुक्त ने अचानक चंद्रप्रकाश पर एक धारदार हथियार से हमला कर दिया, जो कथित तौर पर एक चाकू या कैंची था, जिससे उसकी पीठ पर चोटें आईं। पीड़ित के पिता, माताप्रसाद, और एक अन्य साक्षी, बलराम, जो घटनास्थल

पर उपस्थित थे, ने पीड़ित को बचाने के लिए हस्तक्षेप किया, जिसके बाद अभियुक्त वहां से भाग गया। इसके पश्चात् पीड़ित को चिकित्सकीय परीक्षण के लिए अस्पताल ले जाया गया, जहां उसकी पीठ पर दो कटे हुए घाव पाए गए। इस घटना के संबंध में सूचना पुलिस थाना कोतवाली बलरामपुर, जिला गोंडा में दी गई, और इसी के आधार पर एक प्रथम सूचना रिपोर्ट दर्ज की गई। दिनांक 06.08.1994 को सुबह 10:30 बजे कृपा शंकर अग्रवाल के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 और 506 के अंतर्गत वाद पंजीकृत किया गया था।

5. जाँच अधिकारी ने जाँच के दौरान घटनास्थल का दौरा किया और घटनास्थल का नक्शा नजरी तैयार किया। उन्होंने साक्षियों के बयान भी दर्ज किए और जाँच पूरी होने के बाद, कृपा शंकर अग्रवाल उर्फ गुड्डू के खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307, 504 और 506 के अंतर्गत आरोप-पत्र दाखिल किया।

6. जब वाद सत्र न्यायालय को सौंपा गया, तो अभियुक्त कृपा शंकर अग्रवाल उर्फ गुड्डू के विरुद्ध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307, 504 और 506 के अंतर्गत आरोप निर्धारित किए गए। अभियुक्त ने अपने ऊपर लगाए गए आरोपों से खंडन किया और विचारण की मांग की।

7. अपना वाद साबित करने के लिए, अभियोजन पक्ष ने आठ साक्षियों की जांच की, जिनके नाम हैं: अभियोजन साक्षी-1 माताप्रसाद (सूचनाकर्ता), अभियोजन साक्षी-2 चंद्रप्रकाश



(घायल), अभियोजन साक्षी-3 बलराम, अभियोजन साक्षी-4 कन्हैया लाल (फार्मासिस्ट), अभियोजन साक्षी-5 एच.सी.पी. 20 पुतूलाल, अभियोजन साक्षी-6 डॉ. एस.एन. यादव, अभियोजन साक्षी-7 डॉ. राम विलास, और अभियोजन साक्षी-8 जांचकर्ता गोरखप्रसाद। दस्तावेजी साक्ष्य के रूप में, अभियोजन पक्ष ने तहरीर (प्रदर्श क-1), चिक एफ.आई.आर (प्रदर्श क-2), नकल जी.डी (प्रदर्श क-3), चोट रिपोर्ट (प्रदर्श क-4), पूरक चिकित्सा रिपोर्ट (प्रदर्श क-5), घटनास्थल का नक्शा नजरी (प्रदर्श क-6), और आरोप-पत्र (प्रदर्श क-7) पेश किए।

8. जब अभियोजन पक्ष ने अपने साक्ष्य प्रस्तुत कर दिए, तो विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलकर्ता का बयान दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अंतर्गत दर्ज किया। न्यायालय ने उन परिस्थितियों को समझाया जो अभियुक्त के विरुद्ध थीं, जिस पर अभियुक्त-अपीलकर्ता ने अभियोजन पक्ष की कहानी और साक्ष्यों का खंडन किया। उसने विशेष रूप से कहा कि उसे आपसी शत्रुता के कारण इस वाद में झूठा फंसाया गया है।

9. इसके बाद, विद्वान विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के अधिवक्ताओं की दलीलें सुनने और मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्यों का मूल्यांकन करने के बाद, अभियुक्त-अपीलकर्ता को दोषी पाया। यद्यपि, न्यायालय ने पाया कि यह अपराध भारतीय दण्ड संहिता की धारा 307 के अंतर्गत नहीं आता है, और इसके बजाय अपीलकर्ता को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 324 के अंतर्गत दोषी ठहराया। अपीलकर्ता को दो वर्ष के कठोर कारावास और 3,000 रुपये के जुर्माने का दण्डादेश सुनाया गया, और जुर्माना अदा न की स्थिति में, उसे तीन महीने का



अतिरिक्त कारावास भुगतना होगा। न्यायालय ने आगे निर्देश दिया कि जुर्माने की राशि में से 2,000 रुपये घायल पक्ष को मुआवजे के रूप में दिए जाएं।

10. दोषसिद्धि के विवादित निर्णय और आदेश से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अभियुक्त-अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष यह अपील प्रस्तुत की है।

11. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यद्यपि उन्होंने दोषसिद्धि के निर्णय और दंडादेश के विरुद्ध अपील प्रस्तुत की है, तथापि इस स्तर पर, वे केवल दंडादेश के संबंध में ही अपील पर ज़ोर देना चाहते हैं और अपील के गुण-दोष के आधार पर उस पर ज़ोर नहीं देना चाहते।

12. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि उत्तर प्रदेश राज्य का अपनी स्थानीय परिवीक्षा विधि है, अर्थात् उत्तर प्रदेश प्रथम अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1938। उन्होंने आगे यह भी कहा कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 (केंद्रीय अधिनियम) (जिसे इसके बाद 1958 का अधिनियम कहा जाएगा) भी उत्तर प्रदेश राज्य में लागू होता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य; (2017) 2 एससीसी 198 के वाद में निर्णय दिया था। इसलिए, अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि इन दोनों अधिनियमों में से किसी भी अधिनियम के अंतर्गत लाभ देना न्यायालय के विवेक पर निर्भर है।



13. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि यह घटना लगभग 32 वर्ष पहले (आज की तिथि से) और विचारण न्यायालय के निर्णय से लगभग 10 वर्ष पहले हुई थी और यह भी बताया कि अपीलकर्ता के विरुद्ध कोई और आपराधिक इतिहास नहीं है। यह दलील दी गई कि विचारण खत्म होने और उसके बाद अपील की प्रक्रिया में हुए विलंब के कारण अपीलकर्ता अपने शीघ्र विचारण के अधिकार से वंचित रह गया है। अधिवक्ता ने आगे यह भी कहा कि अपीलकर्ता प्रथम बार अपराध करने वाला व्यक्ति है और उस पर पहले कोई दोषसिद्धि नहीं हुई है, इसलिए उसे अपराधी परीवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाना चाहिए। यह प्रार्थना की गई है कि न्यायालय कृपापूर्वक अभियुक्त-अपीलकर्ता को उक्त अधिनियम की धारा 4 का लाभ देने पर विचार करे, जिससे उसे निर्देशित दण्ड भुगतने के बजाय सदाचरण की परीवीक्षा पर रिहा किया जा सके।

14. दूसरी ओर, विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने अपील का विरोध किया और यह दलील दी कि विचारण न्यायालय द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण अनियमितता या अविधिक कार्य नहीं किया गया है, और अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों को देखते हुए, अभियुक्त-अपीलकर्ता को सही ढंग से दोषी ठहराया गया है।

15. विद्वान अपर शासकीय अधिवक्ता ने आगे यह भी कहा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्ता को कुछ शर्तों के साथ दिया जा सकता है, जैसा कि 1958 के अधिनियम की धारा 4 में ही निर्दिष्ट है।



16. अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों पर विचार करने से पहले, अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 3 और 4 को यहाँ उद्धृत करना उचित होगा :-

"3. कुछ अपराधियों को चेतावनी देकर रिहा करने की न्यायालय की शक्ति-

"जहाँ कोई व्यक्ति भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 379 या धारा 380 या धारा 381 या धारा 404 या धारा 420 के अंतर्गत दंडनीय अपराध करने का दोषी पाया जाता है, या भारतीय दंड संहिता या किसी अन्य विधि के अंतर्गत ऐसे किसी अपराध का दोषी पाया जाता है जिसके लिए दो वर्ष से अधिक का कारावास, या जुर्माना, या दोनों का दंड निर्धारित है, और उसके विरुद्ध कोई पूर्व दोषसिद्धि सिद्ध नहीं होती है, और जिस न्यायालय द्वारा वह व्यक्ति दोषी पाया जाता है, उस न्यायालय की यह राय है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है को ध्यान में रखते हुए, ऐसा करना उचित है, तो, उस समय लागू किसी अन्य विधि में निहित किसी भी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे कोई दंड देने या धारा 4 के अंतर्गत सदाचरण की परिवीक्षा पर रिहा करने के बजाय, उचित चेतावनी देकर रिहा कर सकता है।

स्पष्टीकरण—इस धारा के प्रयोजनों के लिए, किसी व्यक्ति के विरुद्ध पूर्व दोषसिद्धि में, इस धारा या धारा 4 के अंतर्गत उसके विरुद्ध किया गया कोई पूर्व आदेश भी शामिल होगा।



4. कुछ अपराधियों को सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ने की न्यायालय की शक्ति

- (1) जब कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है जो मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दंड नहीं है, और जिस न्यायालय ने उसे दोषी पाया है, उसकी यह राय है कि वाद की परिस्थितियों को, जिनमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र भी शामिल है, ध्यान में रखते हुए, उसे सदाचरण की परीक्षा पर छोड़ देना उचित है तब, उस समय लागू किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, न्यायालय उसे तत्काल कोई दंड देने की अपेक्षा यह निर्देश दे सकता है कि उसे एक बंधपत्र जमानतदार के साथ या बिना जमानतदार के निष्पादित करने पर छोड़ दिया जाए, यह बंधपत्र इस शर्त पर होगा कि वह न्यायालय द्वारा निर्धारित ऐसी अवधि के दौरान जो तीन वर्ष से अधिक नहीं होगी, जब भी उसे बुलाया जाए, उपस्थित होकर अपना दंड ग्रहण करेगा, और इस बीच शांति बनाए रखेगा तथा उसका आचरण अच्छा रहेगा।

बशर्ते कि न्यायालय किसी अपराधी की ऐसी रिहाई का निर्देश तब तक नहीं देगा, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि अपराधी या उसका जमानतदार यदि कोई हो उस स्थान पर, जिस पर न्यायालय का क्षेत्राधिकार है, या उस स्थान पर जहाँ अपराधी उस अवधि के दौरान रहने की संभावना रखता है जिसके लिए वह बंधपत्र निष्पादित करता है, कोई निश्चित निवास स्थान या नियमित रोज़गार रखता है।



17. 1958 के अधिनियम की धारा 4 वहाँ लागू होती है, जहाँ कोई व्यक्ति ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए दण्ड न तो आजीवन कारावास है और न ही मृत्युदंड। न्यायालय, ऐसे अभियुक्त को, धारा में उल्लिखित अनुसार एक बंधपत्र प्रस्तुत करने पर, सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर सकता है। इस धारा के प्रावधानों को लागू करते समय, न्यायालय को अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने से पहले, वाद की परिस्थितियों, अपराधी के चरित्र और अपराध की प्रकृति पर भी विचार करना आवश्यक होता है।

18. जहाँ तक अपीलकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा 1958 के अधिनियम की धारा 4 के लाभ प्रदान करने की प्रार्थना का प्रश्न है, तो इस संबंध में विधिक स्थिति और उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि पर चर्चा करना आवश्यक है।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय ने, **रतन लाल बनाम पंजाब राज्य एआईआर 1965 एससी 444** के वाद में, अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 के उद्देश्य और प्रयोजन पर चर्चा करते हुए, अनुच्छेद सं. 4 में निम्नलिखित टिप्पणी की है:—

"4. यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने के बजाय उसमें सुधार लाना अधिक है। व्यापक रूप से, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और



उससे अधिक आयु के अपराधियों के मध्य, तथा मृत्युदंड या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के मध्य अंतर करता है। जहाँ 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के मामले में, न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधान में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह निषेधाज्ञा जारी की गई है कि वह उन्हें कारावास का दंड तब तक न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र भी शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।"

20. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **वेद प्रकाश बनाम हरियाणा राज्य (1981) 1 एससीसी 447 : एआईआर 1981 एससी 643** के वाद में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 360 सपठित अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 के अनुपालन के संबंध में बेंच और बार के कर्तव्य पर चर्चा करते हुए, निम्नलिखित टिप्पणी की:-

जिस अपराध के लिए दोषसिद्धि किया गया है, वह ऐसा है जिस पर धारा 360 या कम से कम अपराधी परीक्षा अधिनियम, 1958 लागू होता है। हमारे समक्ष उपलब्ध सामग्री अपूर्ण है, क्योंकि विचारण न्यायालय ने दण्ड सुनाने के अपने



कर्तव्य को निभाने में असावधानी बरती है। हम इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि किसी अभियुक्त को दण्ड सुनाना एक संवेदनशील और विवेकपूर्ण कार्य है, न कि केवल अनुमान के आधार पर किया जाने वाला कोई सामान्य या यांत्रिक काम। विचारण न्यायालय को ऐसी सामग्री एकत्र करनी चाहिए थी, जिससे वर्तमान परिस्थितियों में एक उचित दण्ड निर्धारित करने में सहायता मिल सके। अपराधी की सामाजिक पृष्ठभूमि और व्यक्तिगत कारक बहुत महत्वपूर्ण होते हैं, यद्यपि व्यवहार में आपराधिक न्यायालय अपराधी के सामाजिक परिवेश या व्यक्तिगत परिस्थितियों पर शायद ही कभी ध्यान देती हैं। भले ही धारा 360 दण्ड प्रक्रिया संहिता की लागू न हो, फिर भी दण्डादेश सुनाने वाले न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह सक्रिय होकर ऐसे तथ्य एकत्र करे, जिनका दण्डादेश पर असर पड़ता हो और जिनका उद्देश्य अपराधी का सुधार करना हो। वर्तमान वाद में ऐसी सामग्री के अभाव के कारण, हमें अधिवक्ताओं से भी बहुत कम सहायता मिल पाई है। सत्य तो यह है कि अधिवक्ता भी उन विधिक प्रावधानों पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते, जिनका उद्देश्य अपराधी के साथ इस तरह से पेश आना है कि वह अपराध करना छोड़ दे। हम इस बात पर इसलिए ज़ोर दे रहे हैं, क्योंकि दण्ड में सुधार से संबंधित अधिनियम को 'छोटे अधिनियम' मान लिया गया है, और इसलिए उन्हें अधिक महत्व नहीं दिया जाता। यह दृष्टिकोण पूर्णतः गलत है, और यदि ही अधिवक्ता सहायता न करें, फिर भी न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम जैसे अधिनियमों में निहित, दण्डादेश सुनाने के मानवीय उद्देश्य को पूरा करें।



21. यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस माननीय न्यायालय ने **सुभाष चंद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, 2015 लॉ शूट (आल) 1343** के वाद में, इस बात पर ज़ोर दिया है कि उचित मामलों में परीक्षा के विधि को लागू किया जाए और अभियुक्त व्यक्तियों को इस लाभकारी विधान का लाभ दिया जाए। इस न्यायालय ने सभी विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों को निम्नलिखित निर्देश जारी किए:—

“ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लाभकारी अधिनियम को भुला दिया गया है और यहाँ तक कि न्यायाधीश भी विधि के इस प्रावधान को लगभग भूल चुके हैं। इसलिए, वाद को समाप्त करने से पहले, इस न्यायालय को लगता है कि यदि विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों के लिए सावधानी का एक शब्द नहीं लिखा गया, तो मैं अपने कर्तव्यों के निर्वहन में विफल रहूँगा। इस न्यायालय के महानिबंधक को निर्देश दिया जाता है कि वे इस निर्णय की एक प्रति उत्तर प्रदेश के सभी ज़िला न्यायाधीशों को वितरित करें; ज़िला न्यायाधीश बदले में यह सुनिश्चित करेंगे कि इस आदेश की प्रति उनके अधीन कार्यरत सभी न्यायिक अधिकारियों के बीच वितरित हो और इस निर्णय का कठोरता से पालन सुनिश्चित किया जाए। राज्य के ज़िला न्यायाधीशों को यह भी निर्देश दिया जाता है कि वे ऐसे मामलों की सुनवाई करने वाले सभी न्यायालय अधिक विचारण न्यायालयों और अपीलीय न्यायालयों से हर मह रिपोर्ट मंगाएँ, और यह बताएं कि कितने वादों में अभियुक्तों को उपर्युक्त प्रावधानों का लाभ प्रदान किया गया है। ज़िला न्यायाधीशों को यह भी



निर्देश दिया जाता है कि वे प्रत्येक मासिक बैठक में ऐसे वादों की व्यक्तिगत रूप से निगरानी करें। संबंधित ज़िला न्यायाधीश महानिबंधक को एक मासिक विवरण भेजेंगे, जिसमें यह बताया जाएगा कि विचारण न्यायालय/अपीलीय न्यायालय ने कितने वादों में अभियुक्तों को उपर्युक्त लाभकारी अधिनियम का लाभ प्रदान किया है। इस आदेश की एक प्रति तत्काल अनुपालन हेतु महानिबंधक के समक्ष रखी जाए।”

22. इसके अतिरिक्त, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **महाराष्ट्र राज्य बनाम जगमोहन सिंह कुलदीप सिंह आनंद (2004) 7 एससीसी 659** वाद में अपीलकर्ताओं को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ प्रदान किया है, और निम्नानुसार टिप्पणी की है:

“अभियुक्त की ओर से उपस्थित हुए विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी कि यह दुर्घटना वर्ष 1990 की है। दोनों पक्ष शिक्षित हैं और पड़ोसी भी हैं। इसलिए, विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रार्थना की कि अभियुक्त को अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 का लाभ दिया जाए। अभियुक्त की ओर से की गई यह प्रार्थना उचित प्रतीत होती है। यह दुर्घटना दस वर्ष से भी अधिक पुरानी है। यह विवाद पड़ोसियों के बीच नाली के अधिकार को लेकर हुए एक तुच्छ से विवादक पर था। यह दुर्घटना क्रोध के आवेश में हुई थी। सभी पक्ष शिक्षित हैं और आपस में दूर के रिश्तेदार भी हैं। यह दुर्घटना ऐसी नहीं है जिसके लिए अभियुक्त को कारावास का दण्ड भुगतने का निर्देश दिया जाए। हमारी राय में, यह एक ऐसा उपयुक्त वाद है जिसमें अभियुक्त



को परीक्षा पर रिहा कर दिया जाना चाहिए, और उन्हें सदाचरण के लिए एक वर्ष का बंधपत्र भरने का निर्देश दिया जाना चाहिए।

23. अब, **सीताराम पासवान और अन्य बनाम बिहार राज्य एआईआर 2005 एससी 3534** के वाद में अभियुक्तों/अपीलकर्ताओं को परीक्षा अधिनियम का लाभ देने की वांछनीयता के बिंदु पर आते हुए, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:

"उस शक्ति का प्रयोग करने के लिए जो विवेकाधीन है, न्यायालय को वाद की परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति और अपराधी के चरित्र पर विचार करना होता है। अपराध की प्रकृति पर विचार करते समय, न्यायालय को अपराध की गंभीरता और पीड़ित पर अपराध के प्रभाव का यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत अभियुक्त को मिलने वाला लाभ, उन सीमाओं के अधीन है जो इस अधिनियम के प्रावधानों में निहित हैं, और शब्द 'सकता है' स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि यह विवेक न्यायालय के पास है कि वह अपराध की प्रकृति, अपराधी के चरित्र और वाद की समग्र परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 3 या 4 के अंतर्गत अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए अपराधी को रिहा करे या नहीं। अपराधी परीक्षा अधिनियम की धारा 4 के अंतर्गत शक्तियाँ न्यायालय के पास तब आती हैं, जब कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध का दोषी पाया जाता है, जिसके लिए मृत्युदंड या आजीवन कारावास का दण्ड नहीं दिया जा सकता है। इस शक्ति का प्रयोग न्यायालयों द्वारा



किसी व्यक्ति को दोषी ठहराते समय किया जा सकता है, और यदि न्यायालय को लगता है कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधी का चरित्र शामिल है को देखते हुए, अभियुक्त को यह लाभ दिया जाना चाहिए, तो न्यायालय इस शक्ति का प्रयोग अपीलीय या पुनरीक्षण स्तर पर भी कर सकता है, और साथ ही भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के अंतर्गत अपील की सुनवाई करते समय यह न्यायालय भी इस शक्ति का प्रयोग कर सकता है।"

24. यह भी उल्लेखनीय है कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने, **मोहम्मद हाशिम बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (एआईआर 2017 एससी पृष्ठ 660)** के वाद में, निम्नलिखित टिप्पणी की थी:-

"20-.....**रतन लाल बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1965 एससी 444)** के वाद में, **न्यायमूर्ति सुब्बा राव** ने बहुमत की ओर से निर्णय देते हुए इस प्रकार राय व्यक्त की:

यह अधिनियम दंडशास्त्र के क्षेत्र में सुधार की आधुनिक उदारवादी प्रवृत्ति की प्रगति में एक मील का पत्थर है। यह इस सिद्धांत की मान्यता का परिणाम है कि आपराधिक विधि का उद्देश्य अपराधी को दंडित करने की अपेक्षा उसका सुधार करना अधिक है। व्यापक रूप से कहें तो, यह अधिनियम 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों और उससे अधिक आयु के अपराधियों के बीच, तथा मृत्युदंड या आजीवन



कारावास से दंडनीय अपराध के दोषी अपराधियों और कम गंभीर अपराध के दोषी अपराधियों के मध्य अंतर करता है। जबकि 21 वर्ष से अधिक आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह पूर्ण विवेकाधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के उपयुक्त प्रावधानों में निर्धारित शर्तों के अधीन रहते हुए, उन्हें चेतावनी देकर या सदाचरण की परीक्षा पर रिहा कर दे, वहीं 21 वर्ष से कम आयु के अपराधियों के वाद में, न्यायालय को यह निर्देश जारी किया गया है कि वह उन्हें कारावास का दंड न दे, जब तक कि वह इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि वाद की परिस्थितियों जिसमें अपराध की प्रकृति और अपराधियों का चरित्र शामिल है को देखते हुए, उनके साथ अधिनियम की धारा 3 और 4 के अंतर्गत व्यवहार करना उचित नहीं है।

25. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **जगत पाल सिंह और अन्य बनाम हरियाणा राज्य एआईआर 2000 एससी 3622** के वाद में, अभियुक्तों की भारतीय दण्ड संहिता की धारा 323, 452 और 506 के अंतर्गत दोषसिद्धि को बरकरार रखते हुए भी, उन्हें परीक्षा का लाभ प्रदान किया है, और अभियुक्तों को इस शर्त पर रिहा कर दिया है कि वे मजिस्ट्रेट के समक्ष एक बंधपत्र निष्पादित करेंगे, जिसमें वे अगले छह म ह तक अपना आचरण अच्छा रखने और शांति बनाए रखने का वचन देंगे।

26. यह उल्लेखनीय है कि यह घटना वर्ष 1994 में घटित हुई थी। अभियुक्त-अपीलकर्ता लगभग 32 वर्षों से इस विधिक वाद में उलझा हुआ है, और उसके विरुद्ध किसी भी प्रकार के पूर्व आपराधिक इतिहास का कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।



27. वाद के विशेष तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, मेरा मत है कि अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 के प्रावधानों का लाभ अभियुक्त-अपीलकर्ता को दिया जाना चाहिए।

28. उपरोक्त चर्चा के आलोक में अपीलकर्ता कृपा शंकर अग्रवाल (उर्फ गुड्डू) की दोषसिद्धि को बरकरार रखा जाता है, यद्यपि, अपीलकर्ता की उम्र को देखते हुए, जो अब लगभग 70 वर्ष है, उसके दण्ड में यहाँ संशोधन किया जाता है। कारावास की अवधि बिताने के बजाय, उसे अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 4 का लाभ दिया जाता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि वह एक व्यक्तिगत बंधपत्र भरे और संबंधित जिला परिवीक्षा अधिकारी की संतुष्टि के अनुसार, प्रत्येक 20,000 रुपये की राशि के दो जमानतदार प्रस्तुत करे। उसे आज से दो वर्ष की अवधि तक शांति और अच्छे व्यवहार को बनाए रखने का वचन भी देना होगा। ये बंधपत्र अपीलकर्ता द्वारा इस निर्णय की तिथि से दो महीने के भीतर जमा किए जाने हैं।

29. आगे यह भी निर्देश दिया जाता है कि अपीलकर्ता आज से दो महीने के भीतर विचारण न्यायालय में 5,000 रुपये की राशि जमा करेगा। विचारण न्यायालय बाद में उक्त राशि को घायल पक्ष, चंद्रप्रकाश, के पक्ष में मुआवजे के तौर पर जारी कर देगी। यदि घायल व्यक्ति अब जीवित नहीं है, तो उक्त राशि उसके विधिक उत्तराधिकारियों को जारी की जाएगी।



30. उपरोक्त बताई गई किसी भी शर्त का उल्लंघन होने पर, अपीलकर्ता कृपा शंकर अग्रवाल को हिरासत में ले लिया जाएगा ताकि वह विचारण न्यायालय द्वारा उसे दिया गया वास्तविक दण्ड भुगत सके।

31. उपरोक्त संशोधनों के साथ, यह आपराधिक अपील **आंशिक रूप से स्वीकार** की जाती है।

32. इस आदेश की एक प्रमाणित प्रति तत्काल अनुपालन के लिए संबंधित न्यायालय को भेजी जाएगी।

33. कार्यालय को निर्देश दिया जाता है कि वह आवश्यक कार्रवाई के लिए इस आदेश की सूचना विचारण न्यायालय को दे।

34. विचारण न्यायालय का अभिलेख, यदि कोई हो, तो उसे संबंधित जिला न्यायालय को वापस भेज दिया जाय।

17 मार्च, 2026

हसीन यू.

(न्यायमूर्ति प्रमोद कुमार श्रीवास्तव)